

संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 वृद्धि और विकास से तात्पर्य
- 2.4 वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम
- 2.5 शारीरिक वृद्धि और विकास
- 2.6 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास
- 2.7 संवेगात्मक वृद्धि और विकास
- 2.8 सारांश
- 2.9 अभ्यास कार्य
- 2.10 संदर्भित एवं विशेष अध्ययन ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना

मानव विकास का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। एक शिक्षक को बालक की वृद्धि के साथ साथ उस में होने वाले विभिन्न प्रकार के विकास तथा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना आवश्यक है तभी वह शिक्षा की योजना का क्रियान्वयन, विकास तथा वृद्धि के सन्दर्भ में कर सकता है। वृद्धि एवं विकास, ये दोनों शब्द प्रायः बिना कोई भेदभाव किये पर्यायवाची शब्दों के रूप में इस्तेमाल किये जाते रहे हैं। परन्तु अगर कुछ बारीकी से देखा जाये तो वृद्धि एवं विकास दोनों के बीच बहुत कुछ अंतर दिखलाई पड़ता है। इस अंतर की समझ को बढ़ाने के लिए हम इस इकाई का अध्ययन कर सकते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्य प्राप्त कर सकेंगे –

1. वृद्धि और विकास में अंतर कर सकेंगे।
2. वृद्धि और विकास के विभिन्न आयामों का वर्णन कर सकेंगे।
3. बालकों में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, और संवेगात्मक वृद्धि और विकास के अध्ययन की आवश्यकता का वर्णन सकेंगे।

4. वृद्धि और विकास के विभिन्न आयामों को सामान्य स्वरूप को समझ सकेंगे।
5. वृद्धि और विकास के अलग-अलग आयामों को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. वृद्धि और विकास के विभिन्न आयामों के अध्ययन का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 वृद्धि और विकास से तात्पर्य

फ्रैंक ने वृद्धि को कोशीय वृद्धि के रूप में प्रयुक्त करते हुए कहा है "शरीर एवं व्यवहार के किसी पहलू में होने वाले परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं एवं समय की दृष्टि से व्यक्ति में जो परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं वे विकास कहलाते हैं।"

मेरिदिथ ने अपने शब्दों में वृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ में किया है और विकास का प्रयोग विभेद या विशिष्टीकरण के रूप में।

सोरेन्सन के अनुसार "सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग शरीर और उसके अंगों के भार और आकार में वृद्धि के लिए किया जाता है। इस वृद्धि को नापा और तोला जा सकता है। विकास का सम्बन्ध "वृद्धि" से अवश्य होता है पर यह शरीर के अंगों में होने वाले परिवर्तनों को विशेष रूप में व्यक्त करता है।"

हरलॉक के अनुसार "विकास, वृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसके बजाय, इसमें प्रोढावस्था के लक्षण की और परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताओं और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

अतः "वृद्धि" शब्द का उपयोग, किसी व्यक्ति के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक संरचना में होने वाले उन परिवर्तनों के लिए किया जाता है जो आसानी से दृष्टिगत हो या जिन्हें सरलता से नापा जा सके। विकास का अर्थ उन गुणात्मक परिवर्तनों से है, जिसे व्यक्ति अपने अनुभवों और परिपक्वता के कारण प्राप्त करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की वृद्धि विशेष आयु तक चलने वाली प्रक्रिया है तथा यह परिणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति है। आगे वृद्धि विकास का एक चरण है। वृद्धि में हुए परिवर्तनों को देखा और नापा जा सकता है एवं यह केवल शारीरिक परिवर्तन को प्रकट करता है। वहीं विकास जन्म से मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है तथा यह गुणात्मक तथा परिणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति है। विकास में वृद्धि भी सम्मिलित है। विकास में हुए परिवर्तनों को

अनुभव किया जा सकता है लेकिन उन्हें नापा नहीं जा सकता। विकास में संपूर्ण पक्षों के परिवर्तनों को संयुक्त रूप से महसूस किया जा सकता है।

एक व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक अवस्था में कुछ निश्चित विकासात्मक प्रक्रियायें घटित होती रहती हैं जो की उसके जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि में परिवर्तन लाती है। परिवर्तन की गति अथवा उसकी दर व्यक्तियों में भिन्न भिन्न हो सकती हैं पर यह एक निश्चित एवं पूर्वानुमानित प्रारूप के अनुसार ही घटित होती हैं।

वृद्धि और विकास के बीच अंतर को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

वृद्धि	विकास
वृद्धि शब्द तादाद या परिणाम सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे बच्चे के बड़े होने के साथ आकर, लम्बाई, ऊंचाई और भार आदि में होने वाले परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं।	विकास शब्द वृद्धि की तरह केवल परिमाण सम्बन्धी परिवर्तनों के व्यक्त न कर ऐसे सभी परोवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिससे बालक की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में प्रगति होती है।
वृद्धि एक तरह से संपूर्ण विकास प्रक्रिया का एक चरण है। विकास के परिमाण और तादाद सम्बन्धी पक्ष कहा जाता है।	विकास शब्द अपने आप में एक विस्तृत अर्थ रखता है। यह व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है।
वृद्धि शब्द व्यक्ति के शरीर के किसी भी अवयव तथा व्यवहार के किसी भी पहलू में होने वाले परिवर्तनों को प्रकट कर सकता है।	विकास किसी एक अंग प्रत्यंग में अथवा व्यवहार के किसी एक पहलू में होने वाले परिवर्तनों को नहीं बल्कि व्यक्ति में आने वाले संपूर्ण परिवर्तनों को इकट्ठे रूप में व्यक्त करता है।
वृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती, बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने के साथ साथ यह समाप्त हो जाती है।	विकास एक सतत प्रक्रिया है। वृद्धि की तरह बालक के परिपक्व होने पर समाप्त न होकर यह आजीवन चलती है।
वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन बिना कोई विशेष प्रयास किये दृष्टिगोचर हो सकते हैं। साथ ही इन्हें भली भांति नापा जा सकता है।	विकास शब्द कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और व्यवहार में आने वाले गुणात्मक परोवर्तनों को भी प्रकट करता है। इस परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में मापना कठिन है। इन्हें केवल अप्रत्यक्ष

	तरीकों जैसे व्यवहार करते हुए बालक का निरीक्षण करने आदि से ही मापा जा सकता है।
वृद्धि के साथ साथ सदैव विकास होना भी आवश्यक नहीं है। मोटापे के कारण एक बालक के भार में वृद्धि हो सकती है परन्तु इस वृद्धि से उसकी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में कोई वृद्धि नहीं होती और इस तरह से उसकी वृद्धि विकास को साथ लेकर नहीं चलती है।	दूसरी और विकास भी वृद्धि के बिना संभव हो सकती है। कई बार यह देखा जाता है कि कुछ बच्चों की ऊंचाई, आकर और भार में समय गुजरने के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता परन्तु उनकी कार्यक्षमता तथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक योग्यता में बराबर प्रगति होती रहती है।

इस तरह से बारीकी से देखने पर वृद्धि और विकास दोनों प्रक्रियाओं में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ सकता है। मानव जीवन के सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक आदि पहलुओं से सम्बंधित ये सभी परिवर्तन जैसे कि हर्लोक (1956) का विचार है, निम्न प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है –

- १) **आकर में परिवर्तन** – गतिवाही अनुक्षेत्रों में व्यक्ति के शरीर का वजन बढ़ जाता है, जबकि मानसिक दृष्टि से उसकी स्मरण शक्ति, शब्दावली, प्रत्यक्षीकरण, तर्क एवं निर्णय आदि की क्षमता में वृद्धि होती है।
- २) **अनुपात में परिवर्तन** – शारीरिक दृष्टि से व्यक्ति के कायिक डील डौल, गठन एवं विभिन्न अंगों के अनुपात में तबदीली होती है जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह अपनी दुनिया के बारे में अति कल्पना की दशा से ऊपर उठकर वास्तविकता को समझने लग जाता है।
- ३) **पुराने लक्षण लुप्त होना** – शारीरिक क्षेत्रों के थैमस ग्रंथि, बाल, दांत, आँख, कान, आदि की आकृति तथा मानसिक क्षेत्रों में तुतलाकर बोलने, अतिकल्पनात्मक मान्यताओं तथा अभिवृत्तियों में तबदीली आ जाती है।
- ४) **नए लक्षण प्रकट होना** – शरीर के गुप्त स्थलों में बाल, सिर के बाल, छाती तथा कूल्हों में स्थूलता आदि नयी आकृतियों के अधिग्रहण की निशानी है, जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति के आचरण, उसकी नैतिकता एवं मानसिकता में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग जाता है।

इन सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों ही पहलू हैं। ऊपर व्यक्त किये गए विकास, मानव के जीवन में विभिन्न आयामों में होता है।

2.4 वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम

अगर वृद्धि और विकास को हम सामान अर्थों में प्रयुक्त करें तो बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हमें निम्न रूपों अथवा पहलूओं में बढ़ता हुआ व्यक्त होता है –

- 1) **शारीरिक विकास** – व्यक्ति के शारीरिक विकास में उसके शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अवयवों का विकास शामिल होता है।
- 2) **मानसिक और बौद्धिक विकास** – इसमें सभी प्रकार की मानसिक शक्तियां जैसे – सोचने विचारने की शक्ति, कल्पना शक्ति, स्मरण शक्ति तथा एकाग्रता, सृजनात्मकता, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, और सामान्यीकरण आदि से सम्बंधित शक्तियों का विकास सम्मिलित होता है। इसमें विभिन्न संवेगों की उत्पत्ति, उनका विकास तथा इन संवेगों के आधार पर संवेगात्मक व्यवहार का विकास सम्मिलित होता है।
- 3) **संवेगात्मक विकास** – संवेग, व्यक्ति की उत्तेजित दशा है। इसके अंतर्गत अपने संवेगों पर नियंत्रण और उसका उचित समय पर उचित प्रदर्शन की क्रियाओं का विकास सम्मिलित है।
- 3) **नैतिक अथवा चारित्रिक विकास** – इसके अंतर्गत नैतिक भावनाओं, मूल्यों तथा चरित्र संबंधी विशेषताओं का विकास सम्मिलित होता है।
- 4) **सामाजिक विकास** – एक बच्चा प्रारंभ में एक असामाजिक प्राणी होता है। उसमें उचित सामाजिक गुणों का विकास कर समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना सिखना सामाजिक विकास के अंतर्गत आता है।
- 5) **भाषात्मक विकास** – भाषात्मक विकास में बालक के अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का जानना और उसके प्रयोग से सम्बंधित योग्यताओं का विकास शामिल होता है।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा, मनुष्य के शारीरिक विकास की गति धीमी होती है। शैशवावस्था में शारीरिक वृद्धि एवं परिवर्तन तीव्रतम गति से होता है। बाल्यावस्था में यह गति धीमी हो जाती है परन्तु किशोरावस्था में विकास तीव्रतम गति से होता है। शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में शारीरिक विकास 'सिर से पैर की ओर' एवं 'निकट से दूर की ओर' के नियमनुसार होता है।

अभी तक अध्ययन किये गए सामग्री पर आधारित पर बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए

1. सही (✓) या गलत (✗) का निशान लगाइए

- क. वृद्धि शब्द केवल तादाद या परिणाम संबंधी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त नहीं होता है।
- ख. बालक का भार बढ़ना विकास कहलाता है।
- ग. विकास वृद्धि के बिना असंभव है।
- घ. विकास व्यक्ति में आने वाले संपूर्ण परिवर्तनों को इकट्ठा रूप में व्यक्त करता है।

2. विकास और वृद्धि के विभिन्न आयामों को व्यक्त कीजिए।

.....

.....

.....

ऊपर व्यक्त किये गए आयामों को विस्तृत रूप से आने वाले भाग में प्रस्तुत किया गया है। इसमें उनका अर्थ, सामान्य स्वरूप, प्रभावित करने वाले कारक, उनको अध्ययन करने का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता का वर्णन किया गया है।

2.5 शारीरिक वृद्धि और विकास

2.5.1 शारीरिक वृद्धि और विकास का अर्थ

हमारे शारीरिक ढांचे और आंतरिक तथा बाह्य अवयवों में जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। परिवर्तनों की इस प्रक्रिया को ही शारीरिक वृद्धि और विकास का नाम दिया जाता है।

सामान्यतया उस प्रकार के परिवर्तन निम्नलिखित दिशाओं के देखने को मिलते हैं –

१) **डील डौल एवं बाह्य ढांचे से सम्बंधित परिवर्तन** – इस प्रकार के परिवर्तनों में ऊंचाई, भार, शारीरिक, अनुपात आदि ऊपरी दिखाई देने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किये जा सकते हैं।

२) **आंतरिक अवयवों में होने वाले परिवर्तन** – इसके अंतर्गत शरीर के सभी महत्वपूर्ण तंत्रों जैसे स्नायु तंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त तंत्र, उत्सर्जन एवं उत्पादक आदि महत्वपूर्ण तंत्रों तथा

विभिन्न ग्रंथियों की कार्यप्रणाली और क्षमता से सम्बंधित सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल किये जाते हैं।

शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया व्यक्तित्व के उचित समायोजन और विकास के मार्ग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जन्म के प्रारंभ से एक शिशु सब तरह से दूसरों की कृपा पर निर्भर करता है। उसे अपनी सभी प्रकार की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए माँ बाप एवं परिवार के सदस्यों पर आश्रित रहना पड़ता है। शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप आये हुए परिवर्तनों के माध्यम से धीरे धीरे वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के समर्थ बन जाता है। इस क्षेत्र में आई हुई आत्म-निर्भरता उसे अपने व्यक्तित्व के अन्य पक्षों में भी पर्याप्त रूप से स्वावलंबी बनाने में सहायता करती है और इस तरह वह धीरे धीरे पूर्ण परिपक्वता की ओर अग्रसर होता चला जाता है।

2.5.2 शारीरिक वृद्धि और विकास का सामान्य स्वरूप

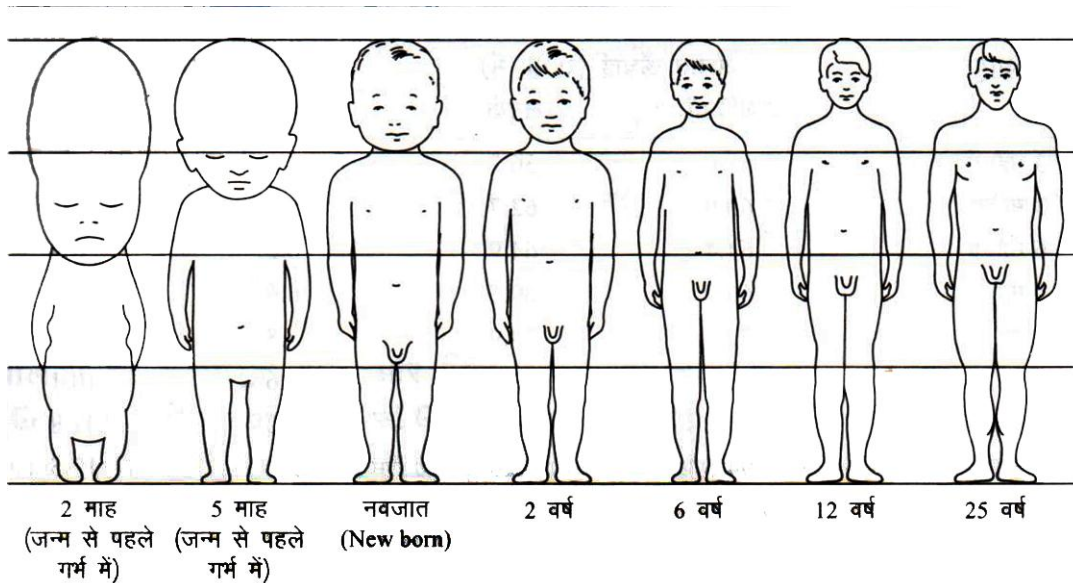
1) ऊंचाई और भार के वृद्धि का सामान्य स्वरूप — जन्म के समय एक बच्चे की ऊंचाई 19 या 20 इंच तथा भार 7 या 8 पौंड से लगभग होता है। उस समय लड़के लड़कियों की अपेक्षा भार और ऊंचाई दोनों में ही आगे होती हैं। पहले दो वर्षों में दोनों की ही ऊंचाई और भार में तेजी से वृद्धि होती है। तीसरे वर्ष से वृद्धि की यह गति कुछ कम हो जाती है और पूर्व बाल्यावस्था तक यही हाल रहता है। पांच वर्ष तक एक सामान्य बालक की ऊंचाई उसके जन्म के समय की ऊंचाई की लगभग दो गुनी तथा भार लगभग पांच गुना हो जाता है। किशोरावस्था के आगमन के साथ साथ एक बार फिर शैशवावस्था की तरह भार और ऊंचाई दोनों की वृद्धि में तीव्रता आती है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा किशोरावस्था में जल्दी प्रवेश करती हैं। अतः 10 और 12 वर्ष के बीच ऊंचाई और भार दोनों में ही लड़कियाँ अपनी आयु के लड़कों से आगे निकल जाती हैं लेकिन इस मुकाबले में वह बहुत दिनों तक आगे नहीं रह पाती तथा किशोरावस्था की समाप्ति होते होते लड़के लड़कियों से बजी मार लेते हैं। विभिन्न आयु वर्ग के लड़के तथा लड़कियों में ऊंचाई सहित भार में औसतन वृद्धि किस प्रकार होती है। इसका बहुत कुछ अनुमान निम्न तालिका क्र. 2.1 द्वारा लगाया जा सकता है।

तालिका क्र. 2.1 बालक एवं बालिकाओं का आयु में वृद्धि के अनुसार औसत ऊंचाई और भार

आयु	औसत ऊँचाई (से.मी. में)		औसत भार (कि.ग्रा. में)	
	लड़कियाँ	लड़के	लड़कियाँ	लड़के
3 महीनों से कम	55.0	56.2	4.2	4.5
3 महीना	60.9	62.7	5.6	6.7
6 महीना	64.4	64.9	6.2	6.9
9 महीना	66.7	69.5	6.6	7.4
1 वर्ष	72.5	73.9	7.8	8.4
2 वर्ष	80.1	81.6	9.6	10.1
3 वर्ष	87.2	88.8	11.2	11.8
4 वर्ष	94.5	96.0	12.9	13.5
5 वर्ष	101.4	102.1	14.5	14.8
6 वर्ष	107.4	108.5	16.0	16.3
7 वर्ष	112.8	113.9	17.6	18.0
8 वर्ष	118.2	119.8	19.4	19.7
9 वर्ष	122.9	123.7	21.3	21.5
10 वर्ष	128.4	124.4	23.6	23.5
11 वर्ष	133.6	133.4	26.4	25.9
12 वर्ष	139.6	138.3	29.8	28.5
13 वर्ष	143.9	144.6	33.3	32.1
14 वर्ष	147.5	150.1	36.8	35.7
15 वर्ष	149.6	155.5	38.8	39.6
16 वर्ष	151.0	159.5	41.4	43.2
17 वर्ष	151.5	161.4	42.4	45.7
18 वर्ष	151.7	163.1	42.4	47.4
19 वर्ष	151.7	163.5	42.4	48.1

2) शारीरिक अनुपात में परिवर्तन — आकर में वृद्धि होने के साथ साथ बच्चों के शारीरिक अवयवों के अनुपात में भी उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। उदहारण के लिए जन्म के समय बच्चे का सिर उसके शरीर की सम्पूर्ण लम्बाई का एक चौथाई भाग होता है और यह आकर में हाथ पैरों की तुलना में अधिक बड़ा दिखायी देता है, परन्तु जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता चला जाता है उसका सिर अपने अनुपात में छोटा होता जाता चला जाता है और किशोरावस्था की समाप्ति तक यह शारीरिक लम्बाई के 1/8 भाग के बराबर ही रह जाता है। सिर के अतिरिक्त टंगे, बाजू तथा शरीर

के अन्य अवयवों के अनुपात में भी तेजी से परिवर्तन आते चले जाते हैं। इस परिवर्तन को चित्र क्रमांक 2.2 के द्वारा दर्शाया गया है।



तालिका क्र 2.2 शिशु के गर्भ में आने से लेकर 25 वर्ष की आयु तक शरीर के अनुपात में परिवर्तन

3) आंतरिक अंगों में वृद्धि और विकास

जन्म के बाद से ही शरीर के समस्त आंतरिक अंगों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है जिसके फलस्वरूप बच्चा अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त स्वावलंबी बन जाता है। नीचे कुछ महत्वपूर्ण अंगों की वृद्धि और विकास का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया जा रहा है

क) स्नायु तंत्र – मां के गर्भ और जीवन के प्रथम चार वर्षों में स्नायु तंत्र तेजी से विकसित होता है। इस विकास के फलस्वरूप जन्म से स्नायु कोशिकाओं की संख्या और आकार में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। जन्म के बाद वर्षों तक नवीन कोशिकाओं का निर्माण नहीं होता अपितु कोशिकाओं में जो कुछ अपरिपक्वता रह जाती है उसे पूरा करने के लिए ही विकास कार्य चलता रहता है।

ख) मांसपेशी तंत्र – जन्म के पश्चात ही मांसपेशियों का निर्माण नहीं होता फिर भी उसका समुचित रूप से विकास होता रहता है। बच्चे की मांसपेशियां हड्डियों से भली-भांति नहीं जुड़ी रहती और पौधों की अपेक्षा अधिक नाजुक होती है परंतु धीरे-धीरे उनकी आकृति, आकार एवं संरचना में अंतर आता चला जाता है और वे अधिक से अधिक शक्तिशाली होती जाती है।

ग) रक्त परिभ्रमण और श्वसन तंत्र – जीवन के प्रारंभिक वर्षों में फेफड़े और हृदय दोनों ही आकार में बहुत छोटे होते हैं। आयु के साथ साथ उनका आकार और वजन बढ़ता चला जाता है और किशोरावस्था की समाप्ति पर उनका पर्याप्त विकास हो जाता है। आकर, वजन आदि बढ़ने के साथ-साथ उनकी कार्य क्षमता में भी यथेष्ट वृद्धि हो जाती है। जहां किशोरावस्था से पहले उन का विकास तेजी से होता है वहीं किशोरावस्था के पश्चात विकास की गति बहुत कम ही रह जाती है।

घ) पाचन तंत्र – बड़ों की तुलना में बच्चों के पेट का आकार बहुत छोटा होता है। जहां बड़ों का पेट थैली जैसी आकृति का होता है वहां बच्चों का पेट नली जैसी आकृति का होता है। इसी कारण बच्चों के पेट में एक साथ ना केवल कम भोजन समा सकता है बल्कि वह बड़ों की अपेक्षा खाली भी जल्दी हो जाता है। इसी कारण बच्चों को बड़ों की अपेक्षा अधिक बार भोजन ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। अधिक भोजन ग्रहण करने के अतिरिक्त उन्हें अपने विकास की प्रकृति को यथावत बनाए रखने के लिए अधिक संतुलित और शक्ति जन्य आहार की आवश्यकता होती है।

अगर शारीरिक वृद्धि और विकास का ठीक प्रकार से अवलोकन किया जाए तो हमें निष्कर्ष के रूप में निम्न बातें मिलती हैं

1. पहले दो या तीन वर्षों में शारीरिक वृद्धि और विकास की गति बहुत तीव्र होती है।
2. इसके पश्चात के भागों में किशोरावस्था के शुरु होने तक यह मंद गति से आगे बढ़ता रहता है।
3. किशोरावस्था के पहले तीन वर्षों में इस गति में शैशवावस्था की तरह तीव्रता देखने को मिलती है।
4. बाद के वर्षों में परिपक्वता ग्रहण करने तक वृद्धि और विकास की गति में पुनः गिरावट आने लगती है।

2.5.3 शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक हो सकते हैं। कुछ महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख नीचे किया गया है।

1. गर्भाधान के समय वंशानुक्रम द्वारा ग्रहण की गई पैतृक विशेषताएं और गुण
2. अकेले एक बच्चे का अथवा एक साथ कई बच्चों का जन्म

3. गर्भ काल में माता की शारीरिक और मानसिक अवस्था
4. गर्भावस्था में माता के माध्यम से बच्चों को प्राप्त होने वाली पोषक सामग्री
5. माता के द्वारा बच्चों को सामान्य अथवा असामान्य रूप से जन्म देना
6. जन्म देते के समय माता का स्वास्थ्य और उसकी देखभाल
7. जन्म के बाद शिशु और माता की देखभाल
8. जन्म के पश्चात के वर्षों में शिशु का पोषण
9. शारीरिक दोषों एवं न्यूनता की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति
10. सारी सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां तथा वातावरण
11. आत्माभिव्यक्ति और खेल कूद, व्यायाम तथा मनोरंजन के अवसर
12. बालक का संवेगात्मक और सामाजिक समायोजन
13. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त निद्रा एवं विश्राम
14. पर्याप्त अथवा अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं

2.5.4 शारीरिक वृद्धि और विकास का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता

शारीरिक विकास व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः इस पर पूरा पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक है। बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। यदि अध्यापक बच्चों के शारीरिक वृद्धि और विकास की प्रक्रिया से अपने आप को परिचित कर लेता है तो उसे निम्न प्रकार से सहायता मिल सकती है –

1. शारीरिक रूप से आसामान्य बच्चों के विषय में अवगत होने पर एक अध्यापक ऐसे बच्चों के समुचित सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन तथा शिक्षा ग्रहण करने में सहायता कर सकता है।
2. बालकों के समुचित विकास में शारीरिक वृद्धि और विकास से परिचित होने से अध्यापक को बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायता मिल सकती है।
3. बच्चों की रुचियाँ, आवश्यकताएँ इच्छाएँ, दृष्टिकोण और उनका संपूर्ण व्यवहार शारीरिक वृद्धि और विकास पर निर्भर करता है और इस प्रकार के ज्ञान द्वारा अध्यापकों को बालकों को भली-भाँति समायोजित करने, उनकी समस्याओं को सुलझाने और आवश्यकताओं को पूरा करने में आसानी होती है।
4. बच्चों की शारीरिक वृद्धि और विकास के सामान्य ढाँचे से परिचित हो कर अध्यापक को पाठान्तर क्रियाओं, समय विभाग चक्र, पढ़ाने की विधि, पाठ्यपुस्तक, सहायक सामग्री और पढ़ने

के लिए उपयुक्त स्थान, फर्नीचर और वातावरण का चुनाव करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

2.6 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास

2.6.1 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का अर्थ

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार शारीरिक वृद्धि और विकास के फलस्वरूप बालकों की सारी क्षमताओं, योग्यताओं और सामर्थ्य में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण वे युवावस्था में ऐसे कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं जो वे छोटी आयु में नहीं कर पाते थे। इसी प्रकार बच्चा अपने बाल्यकाल में ऐसे कार्य नहीं कर सकता था जिन्हें करने के लिए अधिक विकसित मानसिक शक्तियों की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वैसे वैसे उसकी मानसिक योग्यताएँ और क्षमताएँ बढ़ती जाती हैं और वह ऐसी समस्याओं को जिन्हें वह बचपन में नहीं सुलझा पाता था आसानी से सुलझाने लगता है। इस प्रकार से मानसिक अथवा बौद्धिक विकास से तात्पर्य बालक की उन सभी मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है जिसके फलस्वरूप वह अपनी निरंतर बढ़ते हुए वातावरण में ठीक प्रकार समायोजन करता है और बड़ी-बड़ी तथा उलझनपूर्ण समस्याओं को सुलझाने में अपनी मानसिक शक्तियों को पूरी तरह समर्थ पाता है।

2.6.2 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का सामान्य स्वरूप

वृद्धि और विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली मानसिक वृद्धि और विकास को ध्यान में रखकर आगे के पृष्ठों में मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं या दूसरे शब्दों में विभिन्न महत्वपूर्ण मानसिक और बौद्धिक योग्यताओं और शक्तियों के क्षेत्र में बच्चा अपनी आयु के साथ-साथ किस प्रकार आगे बढ़ता है इस बात की चर्चा की गई है।

क) संवेदना और प्रत्यक्षीकरण

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण, दोनों ही मानसिक विकास के महत्वपूर्ण पहलू माने जाते हैं। आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा आदि जननेंद्रियों के द्वारा हमें जो कुछ भी अनुभूति होती है उसे संवेदना कहा जाता है। जब संवेदनाओं से कोई निश्चित अर्थ निकालने की चेष्टा की जाती है तो वह प्रत्यक्षीकरण का रूप धारण कर लेती है। प्रारंभ में एक बच्चा संवेदना और प्रत्यक्षीकरण दोनों में

बहुत पिछड़ा हुआ होता है। उसकी ज्ञानेंद्रियां इतनी अधिक विकसित नहीं होती कि वह वस्तुओं की पहचान कर सकता है और ना उससे कोई विशेष अर्थ ग्रहण कर पाता है। आयु के साथ वह व्यक्तियों और वस्तुओं में अंतर को समझने और उन्हें पहचानने लग जाता है। अब वह परिचित तथा अपरिचित में भेद करने लगता है। इस प्रकार से धीरे-धीरे वह अपने वातावरण से परिचित होने लगता है और उस में निहित वस्तुओं और व्यक्तियों को पहचान कर उनको भली-भांति जानने, अर्थ ग्रहण करने तथा उनसे प्रयोजन सिद्ध करने की चेष्टा करने लगता है।

धीरे-धीरे वह वस्तुओं के प्रत्यक्ष संपर्क में आकर उनके नाम या कोई ध्वनि विशेष के माध्यम से ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना आरंभ कर देता है। इस प्रकार से वह अपनी ज्ञानेंद्रिय का उपयोग करना प्रारंभ कर देता है तो उसकी अपने चारों ओर के वातावरण के विषय में अधिक से अधिक जानने की जिज्ञासा भी बहुत बढ़ जाती है। वह किसी घटना या वस्तु को क्यों, क्या और कौन जैसे प्रश्नों से जोड़ कर अनगिनत प्रश्न पूछने का प्रयास करता है। प्रारंभ में बच्चों में समय, स्थान, आकर, गति और दूरी से संबंधित प्रत्यक्षीकरण विकसित नहीं होते। इसी कारण उसे दूर जाती हुई वास्तविक रेलगाड़ी अपनी खिलौना गाड़ी जैसी दिखाई देती है। धीरे-धीरे उसकी प्रत्यक्षीकरण योग्यता विकसित होने लगती है। जैसे जैसे वह किशोरावस्था की ओर पग बढ़ता है, ज्ञानेंद्रियों की कार्यकुशलता और क्षमता अपने शिखर तक पहुँच जाती है और उनके प्रत्यक्षीकरण का ढंग सुव्यवस्थित और विवेक पूर्ण बन जाता है। अब उसके प्रत्यक्षीकरण अनुभव अधिक निश्चित, अर्थपूर्ण एवं विस्तृत हो जाते हैं तथा उनके ऊपर उसकी आवश्यकताओं, रुचियों और मानसिक तैयारी के अतिरिक्त उसके विश्वासों, विचारों तथा आदर्शों इत्यादि की गहरी छाप पड़ना प्रारंभ हो जाता है।

ख) संप्रत्यय निर्माण

बच्चों में संप्रत्ययों का निर्माण, उनके मानसिक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। संप्रत्यय एक प्रकार से ऐसे सामान्यकृत विचार हैं जो एक व्यक्ति द्वारा विभिन्न प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से विभिन्न व्यक्ति तथा क्रियाओं के बारे में बना लिया जाता है। संप्रत्यय निर्माण में विविधीकरण और समानीकरण से संबंधित दोनों प्रकार की योग्यताओं का उपयोग होता है। वस्तुओं अथवा मनुष्यों को पहचान कर विविधीकरण कर सकने की योग्यता बच्चे में बहुत शीघ्र विकसित होने लगती है। बाद में जब वह अपनी प्रत्यक्षीकरण संबंधी अनुभव के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करना प्रारंभ कर देता है तब संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

संप्रत्यय निर्माण में सभी प्रकार के पूर्व तथा वर्तमान अनुभव महत्व रखते हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभ में वास्तविक वस्तुओं के द्वारा ग्रहण किए गए अनुभव संप्रत्यय निर्माण में बहुत सहयोग देते हैं। इन की सहायता से बच्चे के अंदर विभिन्न संप्रत्ययों का निर्माण हो जाता है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो उस में प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा संप्रत्ययों का निर्माण होने लगता है। बाद के वर्षों में बालकों में ना केवल नए-नए संप्रत्ययों का निर्माण होता है बल्कि उसके अंदर पहले से ही विद्यमान पुराने संप्रत्ययों को भी नवीन रूप में मिलता रहता है। नयी अनुभवों का कसौटी पर खरा ना उतरने के कारण त्याग भी करना पड़ता है।

ग) स्मरणशक्ति का विकास

विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू स्मरण शक्ति है। जन्म के समय बच्चों में स्मरण शक्ति कितनी मात्रा में होती है इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। आयु में वृद्धि होने पर परिपक्वता और अनुभवों के माध्यम से इसका धीरे-धीरे विकास होने लगता है। शुरू के छह महीने के बच्चे जो बातें उनके चारों ओर होती है केवल उन्हीं को स्मरण रखते हैं परंतु साल के अंत तक उनमें वास्तविक स्मरणशक्ति विकसित होने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभ में बच्चों में स्मरणशक्ति के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लग जाते हैं परंतु छोटी अवस्था में बच्चों की स्मरणशक्ति रट्टू तोते की तरह होती है। बाल्यावस्था के बाद के वर्षों और किशोरावस्था में मनन शक्ति धीरे धीरे तर्क और सूझ-बूझ पर निर्भर होने लगती है। प्रौढ़ अवस्था के अंतिम वर्षों में स्मरण शक्ति कम होना प्रारंभ कर देती है।

घ) समस्या समाधान योग्यता का विकास

समस्या समाधान करने की योग्यता भी मानसिक विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। किसी के सामने किसी न किसी रूप में अनगिनत समस्याएं रहती है। उनका समाधान करने के लिए इस प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। सोचने, विचारने और तर्क करने की शक्ति दो से तीन वर्ष की आयु तक विकसित हो जाती है परंतु उनकी विचार शक्ति अधिक सूक्ष्म नहीं होती। वह अमूर्त विचारों का चिंतन करने में प्रायः असमर्थ होता है लेकिन धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ उसमें अमूर्त विचारों का चिंतन करने और सूक्ष्मता के साथ संबंध बनाने की योग्यता आने लगती है। अब वह मौलिक तथा अमूर्त विचारों, काल्पनिक चित्रों, सूत्रों तथा संकेतों की सहायता से विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में समर्थ बन जाता है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभिक अवस्था में बच्चों के सामने हल करने के लिए ऐसी सरल और उपयोगी समस्याएं प्रस्तुत की जानी चाहिए जो

उनके वातावरण से संबंधित हो और जिनके हल के लिए काल्पनिक या अमूर्त विचार, चिंतन तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण की कम-से-कम आवश्यकता पड़ती हो फिर जैसे जैसे उनकी उम्र बढ़ती जाए, उनके सामने कठिन और कठिनतर समस्याएं रखी जानी चाहिए। इस प्रकार से बच्चों में धीरे धीरे समस्या समाधान योग्यता विकसित की जानी चाहिए।

2.6.3 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को अधिक से अधिक प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। गर्भाधान के समय अपने माता-पिता के माध्यम से मानसिक विशेषताओं और गुणों के रूप में जो कुछ भी वंशानुगत पूंजी उसे प्राप्त होती है, वह भविष्य में उसकी मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास की दिशा में एक ठोस आधार का कार्य करती है। इस आधार के ऊपर अपनी आयु में वृद्धि के साथ साथ बच्चा अपने भौतिक, सामाजिक और शैक्षिक वातावरण के सहारे मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास के रूप में भव्य प्रसाद के निर्माण में संलग्न रहता है। वास्तव में देखा जाए तो परिपक्वता और सीखना दोनों ही मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिपक्वता द्वारा शारीरिक वृद्धि और विकास में होने वाली यह वृद्धि मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास को काफी प्रभावित करती है। जन्म के समय मस्तिष्क और स्नायु तंत्र दोनों ही बहुत विकसित होते हैं। जन्म के पश्चात इस में तेजी से वृद्धि और विकास आरंभ हो जाता है और जैसे-जैसे इन में परिपक्वता आती जाती है वैसे वैसे बच्चे की मानसिक और बौद्धिक शक्तियां और योग्यताएं बढ़ जाती हैं। इस प्रकार स्नायु तंत्र मानसिक और बौद्धिक विकास को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में पूरी तरह से सहायक सिद्ध होता है।

सीखने की प्रक्रिया भी, चाहे वह औपचारिक शिक्षा अथवा किसी माध्यम से हो या फिर चाहे वह अनौपचारिक शिक्षा अथवा व्यक्तिगत अनुभव के ऊपर आधारित हो, स्वाभाविक रूप से परिपक्वता के परिणाम स्वरूप होने वाली मानसिक वृद्धि और विकास को अपनी चरमसीमा तक पहुंचाने में पूरी तरह सहायक सिद्ध होती है। मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास में इसकी भूमिका की तुलना शारीरिक वृद्धि और विकास की दिशा में शारीरिक व्यायाम द्वारा उठाए जाने वाले लाभ से की जा सकती है जैसा कि सोरेन्सन ने लिखा है "एक बच्चे की टांगें, भुजाएं और शरीर स्वास्थ्यप्रद खेल द्वारा सशक्त बनता है। हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि मस्तिष्क और स्नायु तंत्र दोनों ही

पढ़ने, गणना करने, स्मरण रखने, बोलने, कल्पना करने और अन्य मानसिक क्रियाओं के करते रहने में होने वाले अभ्यास और मानसिक व्यायाम द्वारा उन्नत और अधिक सक्षम बन जाते हैं।

2.6.4 मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास का महत्व और उसकी शैक्षणिक उपयोगिता

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक और बौद्धिक वृद्धि और विकास के स्वरूप का ज्ञान और मानसिक और बौद्धिक योग्यताओं और क्षमताओं में आयु के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों की अमूल्य जानकारी अध्यापक के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इस उपयोगिता को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

1. विभिन्न आयु स्तरों पर पाठ्यक्रम संबंधी और सहगामी क्रियाओं तथा अनुभवों के जीवन और नियोजन में इससे सहायता मिल सकती है।
2. किस विधि और तरीके से पढ़ाया जाए, सहायक सामग्री तथा शिक्षण साधन किस प्रकार उपयोग में लाया जाए, शैक्षणिक वातावरण किस प्रकार का हो यह सब निश्चित करने में भी अध्यापक को इस से सहायता मिलती है।
3. विभिन्न अवस्थाओं और आयु स्तरों पर बच्चों की मानसिक बुद्धि और विकास को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी इस से सहायता मिल सकती है।
4. इसकी सहायता से अध्यापक को यह ज्ञात हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की पढ़ाई और कार्य जिन्हें करने के लिए मानसिक और बौद्धिक जिस प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता होती है, उपयुक्त समय पर उन शक्तियों के विकसित होने पर ही प्रारंभ कराने चाहिए। अनावश्यक शीघ्रता और देरी दोनों ही इस अवस्था में हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।
5. इस प्रकार के ज्ञान द्वारा अध्यापक अपने शिष्यों की मानसिक और बौद्धिक शक्तियों और क्षमताओं के पूर्ण विकास में संपूर्ण सहयोग प्रदान कर सकता है। वह समस्याओं के समाधान और सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण दे सकता है। बिना सोचे समझे तोते की तरह रटने और अंधों की तरह इधर-उधर हाथ मारकर कार्य में सफल होने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा तर्क शक्तियों तथा सूझ-बूझ के आधार पर ध्यान रखना और अन्य कार्य संपन्न करने में भी वह उनकी सहायता कर सकता है। उनकी निरीक्षण, प्रत्यक्षीकरण, सामान्यीकरण संबंधी योग्यताओं को विकसित करने में भी उनकी मानसिक और बौद्धिक शक्तियों की वृद्धि और विकास के स्तर को ध्यान में रखते हुए वह उनकी पूरी मदद कर सकता है।

2.7 संवेगात्मक वृद्धि और विकास

2.7.1 संवेगात्मक वृद्धि और विकास का अर्थ

एक बालक के संवेगात्मक विकास और व्यवहार के आधार हैं – उसके संवेग। हर्ष, प्रेम और उत्सुकता के समान अभिनंदनीय संवेग उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में सहयोग देते हैं जबकि भय, क्रोध और खुशियां जैसे निंदनीय संवेग उसके विकास को विकृत और कुंठित कर सकते हैं। इस प्रकार जैसा कि गेट्स एवं अन्य ने लिखा है “बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसके विकास के अन्य पहलुओं के अनुरूप होता है और उनसे उसका अन्तःसंबंध होता है।” किसी संवेग से अभिप्राय एक ऐसी विशेष भावात्मक अनुभूति से है जिसकी उपस्थिति का एहसास शरीर के भीतर होने वाले परिवर्तनों एवं बाहर दिखाई देने वाले विशेष लक्षणों से प्रतीत होता है तथा जिसके वशीभूत व्यक्ति एक विशेष प्रकार का व्यवहार करते हुए पाया जाता है।

संवेगात्मक विकास मानव वृद्धि और विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रेम, क्रोध, भय, घृणा आदि संवेग बच्चे के व्यक्तित्व और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार केवल उसकी शारीरिक वृद्धि और विकास को भी प्रभावित नहीं करता बल्कि बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक और सौंदर्य बोध के विकास पर भी यथेष्ट प्रभाव डालता है। संवेगों की मानव जीवन में इस बहुमुखी उपयोगिता के कारण उनके बारे में पूरी तरह जानना अति आवश्यक हो जाता है।

मॉकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों को जन्मजात प्रवृत्तियां मानते हुए उन्हें सभी प्रकार के संवेगों को जन्म देने वाला कहा है। उनके अनुसार मूल प्रवृत्तिजन्य व्यवहार के तीन पक्ष होते हैं – ज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष और क्रियात्मक पक्ष। उदाहरण के रूप में जब बच्चा किसी भयानक जानवर को अपनी ओर आता हुआ देखता है तब उसकी मूल प्रवृत्ति जन्य व्यवहार में उपरोक्त तीन पक्ष देखने को मिलते हैं। पहले तो वह उस भयानक जानवर का प्रत्यक्षीकरण करता है। यह जानकर कि वह एक भयानक जानवर है उसे भय नामक संवेग की अनुभूति होती है। इस अनुभूति के परिणाम स्वरूप वह भागकर अपने प्राण रक्षा का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के उदाहरणों के आधार पर मॉकडूगल ने यह निष्कर्ष निकाला कि मूल प्रवृत्तिजन्य उत्तेजना के समय होने वाली भावात्मक अनुभूति को ही संवेग कहा जाता है। उसने मुख्य रूप से 14 मूल प्रवृत्तियों की चर्चा की और स्पष्ट रूप से संवेगों को इन प्रवृत्तियों से विकास होते हुए दिखाया है। कौन से संवेग के साथ कौन सी मूलप्रवृत्तियाँ जुड़ी है इसका ज्ञान नीचे दी गई तालिका क्र 2.3 से हो सकता है।

तालिका क्र 2.3 मूलप्रवृत्तियाँ एवं उनसे सम्बंधित संवेग

क्रमांक S.No.	मूलप्रवृत्ति (Instinct)	सम्बन्धित संवेग (Emotion accompanying it)
1.	पलायन या भागना (Escape)	भय (Fear)
2.	युयुत्सा, युद्धप्रियता (Combat)	क्रोध (Anger)
3.	निवृत्ति (Repulsion)	घृणा (Disgust)
4.	जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
5.	शिशुरक्षा (Parental)	वात्सल्य, स्नेह (Tender emotion, Love)
6.	शरणागति (Appeal)	विषाद (Distress)
7.	रचनात्मकता (Construction)	संरचनात्मक भावना (Feeling of creativeness)
8.	संचयप्रवृत्ति (Acquisition)	स्वामित्व की भावना (Feeling of ownership)
9.	सामूहिकता (Gregariousness)	एकाकीपन (Feeling of loneliness)
10.	काम (Sex, Mating)	कामुकता (Lust)
11.	आत्मगौरव (Self-assertion)	श्रेष्ठता की भावना (Positive self-feeling or Elation)
12.	दैन्य (Submission)	आत्महीनता (Negative self-feeling)
13.	भोजनान्वेषण (Food-seeking)	भूख (Appetite)
14.	हास (Laughter)	आमोद (Amusement)

2.7.2 विकास की विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास

विकास अपने सामान्य रूप में आगे बढ़ने के साथ साथ होने वाले परिवर्तनों का ही दूसरा नाम है। जन्म के पश्चात बच्चे में धीरे-धीरे विभिन्न संवेगों का जन्म होता रहता है। बचपन में संवेगों को जागृत करने वाले उद्दीपकों की प्रवृत्ति में भी बाद में पर्याप्त अंतर आता चला जाता है। संवेगों के अभिव्यक्ति करने का ढंग भी परिवर्तित होता जाता है। इन सब परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले संवेगात्मक विकास का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया जा सकता है।

क) शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

अपने जन्म के समय से ही अपनी चिख पुकार और हाथ-पैर चलाने के द्वारा बच्चा अपने अंदर संवेगों की उपस्थिति का आभास देता है। लेकिन इस अवस्था में उस में कौन-कौन से संवेग विद्यमान रहते हैं इस बात के कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते। सामान्य उत्तेजना व्यक्त करने की यह अंधावस्था कुछ समय पश्चात समाप्त हो जाती है। शिशु की सामान्य उत्तेजना के द्वारा उसके हर्ष और विषाद का अनुमान लगाया जा सकता है। अचानक होनेवाली जोर की आवाज और

शोरगुल, गीला बिछौना, अधिक ठंडी और गर्म चीजों का स्पर्श, भूख लगना आदि उद्दीपकों के प्रति शिशु की प्रतिक्रिया विषादयुक्त होती है वहीं दूसरी ओर प्यार से थपथपाना, गोदी में लेकर प्यार करना और मां द्वारा स्तनपान करना आदि उद्दीपकों के प्रति उसकी क्रिया आनंदमय चेष्टाओं के रूप में प्रकट होती है। शैशवावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति में भी निरंतर निखार आता रहता है। शैशवावस्था के प्रारंभिक महीनों में संवेगात्मक रूप से उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों में शिशु अपनी प्रतिक्रिया शरीर के द्वारा व्यक्त करता है। धीरे-धीरे आयु के बढ़ने के साथ-साथ वह अपने संवेगों की अभिव्यक्ति गत्यात्मक क्रियाओं के माध्यम से न कर भाषा के द्वारा करने लगता है।

ख) बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

जैसे जैसे एक बालक शैशवावस्था से बाल्यावस्था की ओर बढ़ता है उसकी दुनिया भी बड़ी होती जाती है और उसके संवेग अनेक प्रकार के उद्दीपक और परिस्थितियों द्वारा जागृत होना प्रारंभ कर देते हैं। बालक के संवेगात्मक व्यवहार को स्कूल का वातावरण, हम जोलियों के साथ उसका संबंध और अन्य वातावरण संबंधी कारक प्रभावित करते हैं। यहां बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति उचित माध्यम से करने का प्रयास करता है। संवेगात्मक रूप से तब उसमें कुछ स्थिरता एवं गंभीरता आने लगती है। परिवर्तनों के मूल में कई कारण हैं, प्रथम तो बाल्यावस्था में बालक को अपनी भावनाओं के प्रकाशन के लिए भाषा का माध्यम मिल जाता है, दूसरे अब वह अधिक सामाजिक हो जाता है और यह अनुभव करने लगता है कि अब उसे डरना, बातचीत में रोना अथवा गुस्सा होना शोभा नहीं देता और तीसरे, उसमें बुद्धि का पर्याप्त विकास हो जाने के कारण वह अपने संवेगात्मक उफान पर नियंत्रण स्थापित करने में समर्थ बन जाता है।

ग) किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

किशोरावस्था में एक बार फिर संवेगात्मक संतुलन बिगड़ने लगता है। जीवन के किसी अन्य अवस्था में संवेगात्मक शक्ति का प्रभाव इतना तीव्र नहीं होता जितना की इस अवस्था में पाया जाता है। एक किशोर के लिए अपने संवेगों पर नियंत्रण रखना बहुत कठिन होता है। योनि ग्रंथियों के तेजी से क्रियांवित होने और शारीरिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के कारण बाल्यावस्था में पाई जाने वाली संवेगात्मक स्थिरता और शांति भंग हो जाती है। वह संवेगात्मक दृष्टिकोण से बहुत चंचल और अस्थिर हो जाते हैं। जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाना, उत्तेजित हो जाना, निराश होकर आत्महत्या पर उतारु हो जाना, प्रथम दृष्टि में विपरीत लिंग के व्यक्ति को दिल दे बैठना आदि

किशोरों के संवेगात्मक व्यवहार की सामान्य विशेषताएं हैं। अतः इस अवस्था में संवेगों को ठीक प्रकार प्रशिक्षित करने और संवेगात्मक शक्तियों को अनुकूल दिशा में प्रवाहित करने की अत्यंत आवश्यकता है। प्रौढ़ अवस्था आने तक संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। इस अवस्था में प्रायः सभी व्यक्तियों में संवेगात्मक रूप से परिपक्वता आ जाती है

2.7.3 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कई कारक हो सकते हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है।

1) स्वास्थ्य और शारीरिक विकास

शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य का संवेगात्मक विकास के साथ बहुत गहरा संबंध है। स्वस्थ एवं पुष्ट बच्चों की अपेक्षा प्रायः कमजोर एवं बीमार बच्चे संवेगात्मक रूप से अधिक असंतुलित एवं असमायोजित पाए जाते हैं। संतुलित संवेगात्मक विकास के लिए विभिन्न ग्रंथियों का ठीक प्रकार काम करना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार शारीरिक विकास की दशा और उसके स्वास्थ्य का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

2) बुद्धि

सामान्य रूप से अपनी ही उम्र के कुशाग्र बालकों की अपेक्षा निम्न बुद्धि स्तर के बालकों में कम संवेगात्मक संयम पाया जाता है। विचार शक्ति, तर्क शक्ति आदि बौद्धिक शक्तियों के सहारे ही व्यक्ति अपने संवेगों पर अंकुश लगा कर उन को अनुकूल दिशा देने में सफल हो सकता है। अतः प्रारंभ से ही बच्चों की बौद्धिक शक्तियां बच्चों के संवेगात्मक विकास को दिशा प्रदान करने में लगी रहती है।

3) पारिवारिक वातावरण और आपसी संबंध

अक्सर परिवार में यह देखा जाता है कि बड़ों का जैसा संवेगात्मक व्यवहार होता है, बच्चे भी उसी तरह का व्यवहार करना सीख जाते हैं। परिवार का अशांत वातावरण बच्चों में क्रोध, भय, चिंता, ईर्ष्या आदि संवेगों को ही जन्म देता है। जबकि प्रेम, दया, सहानुभूति और आत्म सम्मान से भरपूर वातावरण बच्चे में उचित और अनुकूल संवेद पैदा करता है। माता पिता तथा अन्य परिजनों के द्वारा उसके साथ किया जाने वाला व्यवहार भी उसकी संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। यहाँ तक कि परिवार में बच्चों अथवा भाई-बहनों की संख्या, उस की पहली, दूसरी या आखरी

संतान होना, परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति, माता पिता द्वारा उसकी उपेक्षा या आवश्यकता से अधिक डाँट और लाड दुलार आदि बातें भी बच्चों के संवेगात्मक विकास को बहुत अधिक प्रभावित करती है

4) विद्यालय का वातावरण और अध्यापक

विद्यालय का वातावरण भी बालकों के संवेगात्मक विकास पर पूरा-पूरा प्रभाव डालता है। विद्यालय के वातावरण में व्याप्त सभी बातें जैसे विद्यालय की स्थिति, उसका प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश, अध्यापन का स्तर, पाठांतर क्रियाओं और सामाजिक कार्यों की व्यवस्था, मुख्य अध्यापक एवं अध्यापकों के पारस्परिक संबंध और अध्यापकों का स्वयं का संवेगात्मक व्यवहार आदि बालक के संवेगात्मक विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है।

5) सामाजिक विकास और हमजोलियों के साथ संबंध

बच्चा जितना अधिक सामाजिक होगा संवेगात्मक रूप से उतना ही परिपक्व और सहनशील बनेगा। बच्चों का ठीक-ठाक संवेगात्मक विकास और संवेगात्मक व्यवहार अपेक्षित है। उस का पोषण बच्चे में उचित सामाजिक गुणों का विकास पर भी निर्भर करता है और इस दृष्टि से सामाजिक विकास संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने में पूरी-पूरी भूमिका निभाता है।

6) पास पड़ोस, समुदाय और समाज

परिवार और विद्यालय के अतिरिक्त बच्चों का अपने पड़ोस, समुदाय और समाज जिसमें वह रहता है उसके संवेगात्मक विकास को बहुत प्रभावित करते हैं। अपने संवेगात्मक व्यवहार से संबंधित सभी अच्छे बुरे संवेग और आदतों को वह अपने संपर्क में आने वाले सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से ग्रहण करता है। एक साहसी और निर्भय जाति या समुदाय में पैदा होने वाले अथवा ऐसे वातावरण में पलने वाले बच्चे में भी साहस और निर्भयता के गुण आ जाना स्वाभाविक हैं। जिस समाज में बड़े लोग शीघ्र ही उत्तेजित होकर गाली गलोच और मारपीट करते रहते हैं उनके बच्चे भी अनायास ही संवेगात्मक कमजोरियों के शिकार हो जाते हैं।

2.7.4 बच्चों के संवेगात्मक विकास में अध्यापक की भूमिका

अध्यापकों को बालकों के संतुलित संवेगात्मक विकास में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभानी चाहिए। यह किस प्रकार की जा सकती है इसकी चर्चा निम्न पंक्तियों में की जा रही है।

संतुलित संवेगात्मक विकास के लिए स्वास्थ्य और शारीरिक विकास बहुत आवश्यक है। अध्यापकों को स्वस्थ और निरोग कैसे रहा जाए इसके विषय में अच्छी जानकारी देनी चाहिए। माता पिता के सहयोग से बच्चों के संतुलित आहार और खानपान की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। अध्यापकों को अभिभावकों के साथ संपर्क स्थापित कर उन्हें उनके बच्चों की शारीरिक कमजोरियाँ, न्यूनताओं, बीमारियों आदि से अवगत कराना चाहिए तथा उनके निराकरण के लिए घर विद्यालय और चिकित्सालयों द्वारा उचित प्रबंध की व्यवस्था करवानी चाहिए।

अध्यापकों को बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए तथा उनके माता-पिता के साथ उनके कल्याण के लिए उचित परामर्श देने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपने स्वयं के व्यवहार के द्वारा भी उनको संवेगात्मक संतुलन बनाने में पूरी सहायता देनी चाहिए। बच्चों की संवेगात्मक शक्तियों के उचित प्रकाशन और अभिव्यक्ति के लिए उन्हें पाठांतर क्रियाओं तथा रोचक क्रियाओं के माध्यम से उचित अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। पाठ्यक्रम और अध्यापन विधियाँ यथेष्ट रूप से परिवर्तनशील, प्रगतिशील और बाल केंद्रित होने चाहिए। बालकों को अपने अध्यापकों से पर्याप्त स्नेह और सहयोग मिलना चाहिए। अध्यापकों को बालकों के स्वाभिमान का ध्यान रखकर ही उन्हें उनकी भूल का एहसास दिलाना चाहिए।

धार्मिक और नैतिक शिक्षा को विद्यालय कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। अध्यापकों को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर बालकों को संवेगात्मक रूप से अधिक संतुलित और संयमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। बालकों को उनकी मित्र मंडली और सामाजिक परिवेश में उचित स्थान मिलना चाहिए। अध्यापकों द्वारा बालक का संवेगात्मक व्यवहार सामान्य है अथवा नहीं इस बात का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए। अगर उसमें उन्हें कुछ असमानता का आभास हो तो समय से पहले योग्य व्यक्तियों की सहायता ले कर उसके निराकरण और रोकथाम के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

अभी तक अध्ययन किये गए सामग्री पर आधारित बोध प्रश्न

नीचे दिए गए रिक्त स्थान पर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिए

1. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक बताओ।

.....

2. खाली स्थान भरो –

- क. बालिकाओं का विकास बालकों की अपेक्षा..... से होता है।
ख. परिपक्वता का संबंध..... से है।
ग. विकास की प्रक्रिया जीवन पर्यंतसे चलती रहती है।

3. सही उत्तर पर (✓) और गलत उत्तर पर (✗) लगाइए

- क. संवेदना की प्रवृत्ति का वेग बढ़ने से संवेग उत्पन्न होते हैं।
ख. संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है।
ग. संवेग स्थिर होते हैं।

2.8 सारांश

वृद्धि की तुलना में विकास शब्द अपने आप में काफी बड़ा और विस्तृत है। विकास में परिणात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन शामिल हैं जबकि वृद्धि शब्द केवल मात्र परिणाम संबंधी परिवर्तनों के लिए उपयोग किया जाता है। परिपक्वता आ जाने पर वृद्धि थम जाती है लेकिन विकास जन्म से प्रारंभ होकर मृत्यु तक चलती रहती है। वृद्धि और विकास के विभिन्न आयाम हैं। इन आयामों में शारीरिक विकास, मानसिक और बौद्धिक विकास, संवेगात्मक विकास, नैतिक और चारित्रिक विकास, सामाजिक विकास और भाषा का विकास शामिल हैं। एक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए इन सभी आयामों में विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। विकास और वृद्धि के विभिन्न आयामों के सामान्य स्वरूप का अध्ययन प्रत्येक अध्यापक को अत्यंत आवश्यक रूप से करना चाहिए। आयामों के सामान्य स्वरूपों के ज्ञान से एक अध्यापक एक विशिष्ट उम्र के बालक के लिए उचित अधिगम प्रणाली बना सकता है।

2.9 अभ्यास कार्य

1. बालक के विकास और वृद्धि के आयामों की जानकारी एक अध्यापक के लिए बहुत आवश्यक है। इस कथन का विवेचन करें।
2. प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर के तीन – तीन विद्यार्थी चुनकर उनके वृद्धि और विकास के विभिन्न आयामों पर उनका साक्षात्कार करें और एक रिपोर्ट तैयार करें।

3. अपने जीवन के शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोर अवस्था के विषय में विचार करें और इस इकाई में दिए गए विभिन्न पहलुओं से उसकी तुलना करें।

2.10 संदर्भित एवं विशेष अध्ययन ग्रंथ

Carmicheal, L (1946) (Ed.), *Manual of Child Psychology*, New Delhi, John Wiley,

Crow, L.D. and Crow, Alice (1973) *Educational Psychology*, New Delhi, Eurasia Publishing House

Hobart, C. Frankel, J. and Walker, M. (2009). *A practical guide to child observation and assessment*. (4th Edition.) Cheltenham: Stanley Thornes Publishers

Hurlock, E. B. (1956), *Child Development*, Tokyo, McGraw-Hill

Mangal, S. K. (2002), *Advanced Educational Psychology*, New Delhi, Prentice-Hall of India

Marry, F. K. and Marray, R. V. (1940) *From Infancy to Adolescence*, New York: Harper and Brothers.

Mathur S.S.(2007), *Fundamentals of Educational Psychology*, Himalaya Publishing House.

Sorenson, Herbert (1948) *Psychology in Education*, New York, McGraw-Hill

Wood, J. (1974) *How do You Feel?* Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice Hall